International Journal of Sanskrit Research 2015; 1(6): 44-46

ISSN: 2394-7519
IJSR 2015; 1(6): 44-46
© 2015 IJSR
www.sanskritjournal.com
Received: 03-08-2015
Accepted: 07-09-2015

अवधेश कुमार मिश्र
व्याख्याता – साहित्य, राजकीय विद्वलनाथ सदाशिव पाठक आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, कोटा, राजस्थान, भारत

Correspondence
अवधेश कुमार मिश्र
व्याख्याता – साहित्य, राजकीय विद्वलनाथ सदाशिव पाठक आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, कोटा, राजस्थान, भारत

काव्य हृदय एक चिन्तन

अवधेश कुमार मिश्र

सारांश
काव्यशास्त्रीय परम्परा में निबद्ध संस्कृत कवियों का कर्म उनकी संवेदनाओं का अद्भुत तरंग है। उसका दायित्व केवल 'इतिवृत' का वर्णन मात्र नहीं होता, वह तो अपनी सफल तूलिका से ऐसा तथ्य सहृदय सामाजिकों के लिये प्रस्तुत करता है, जिससे पाठकों को वेद्यान्तर – सम्पर्कशून्य, अलौकिक आनन्द की अनुभूति हो सके। जगत् की असारता और उद्वेगजनकता को देखकर महाकवियों ने लोकोत्तर आनन्द की उपलब्धि पुरस्सर चतुवर्ग फलप्राप्ति के लिये काव्यात्मिका सारस्वतीसृष्टि का निर्माण किया है। इसीलिए प्रभुसम्मित वेदशास्त्रादि तथा सुहृत्सम्मित पुराणेतिहास से विलक्षण सत्कवियों की मंजु भाषिणी – भणिति – कामिनी की भाँति मानव मन को आह्लादित करती हुयी, अपूर्व अलौकिक आनन्द की उपलब्धि कराती है। इस सन्दर्भ में आनन्दवर्धन का यह कथन सर्वथा उपयुक्त है।
अतिशय रमणीय तत्त्वों को प्रवाहित करती हुयी महाकवियों की वाणी, सरस जनवाणी की गीति के रूप में उसकी विलक्षण प्रतिभा को सूचित करती है। वस्तुतः कवि जन प्रतिनिधि होता है, उसके विचार सबके विचार होते है, इसलिए उसकी अनुभूति ललितपदकदम्बक के रुप में सहृदयों के हृदय में प्रविष्ट होकर जड़–चेतनात्मक जगत् से उसका तादात्म्य करा देती है।
जहाँ स्वकीय और परकीय की क्षोदीयसी भावना समाप्त हो जाती है। जिससे सहृदय सामाजिक अपने अन्तः स्थित रत्यादिभावों का आस्वादन करता है। यह आस्वादन ही काव्य की परा उपनिषद् है । ऐसी अनुभूति कराने में सक्षम कवि ही रससिद्ध कवीश्वर की उपाधि पाते है और इनका यह रस काव्य का हृदय कहलाता है।

कूटशब्द: विलक्षण, तादात्म्य, तूलिका, संवेदनाओं, आस्वादन, सहृदय

प्रस्तावना
हृदयपक्ष
भावों का प्रवाह स्थल, काव्य गंगा की गंगोत्री, अन्तरंग–तरंगों का तरल स्थल तथा संस्कार जन्य वासना रुप स्थायी भावों का आगार है हृदय जहाँ से अनुभूत भाव छन्द रुप में प्रस्फुटित होते हैं वहीं जन–मनरंजन में समर्थ कवि की कवितामयी वाणी प्रमाताओं को अलौकिक हृदयाहलाद प्रदान करती है वही हृदयालादक भाव जब रस के रुप में परिणत हो जाता है तब काव्य का आत्मस्थानीय तत्व बन जाता है। वस्तुतः रस ही काव्य की आत्मा है। जीवनाधायक है–

'रस एवात्मा सार रूप तया जीवनाधायको यस्य

जिस तरह प्राण शरीर के अन्दर अवस्थित रहकर स्वयं को प्रकाशित करता है, वैसे ही रस शब्दार्थ के अन्दर अवस्थित रहकर काव्य जीवन को प्रकाशित करता है तथा उसकी अन्तः चेतना को तुष्टि देता है। काव्य का प्रमुख पक्ष होने के कारण ही रस को हृदय पक्ष कहा जाता है। हृदयवादी आचार्य हृदयदर्पणकार भट्टनायक ने हृदय की पूर्णता से काव्य का उद्भव माना है।

'एतदेवोक्तं हृदयदर्पणे– यावत् पूर्णो न चौतेन तावन्नैव वमत्मयम्''

अर्थात् जब तक हृदय भाव से परिपूर्ण नहीं हो जाता, तब तक पद्य के रूप में वह उसे उद्गीर्ण नहीं कर सकता। एवमेव आचार्यों ने काव्यात्मतत्व रस को काव्य का हृदय पक्ष स्वीकृत किया है।

इसे अंगी रूप में अंगीकार किया गया है। काव्य में वाग्वैदग्ध्य की प्रधानता होने पर भी रस को ही जीवन माना गया है।

'वाग्वैदग्धप्रधानोऽपि रस एवात्र जीवितम् ''

वस्तुतः काव्य का हृदय रस वहीं तत्व है जिसे पं. जगन्नाथ ने रमणीयार्थ ध्वन्यालोककार ने प्रतीयमानार्थ तथा आचार्य क्षेमेन्द्र ने औचित्य नाम दिया है। निःसन्देह काव्य हृदय की अभिव्यक्ति है वह हृदय से सहज ही प्रस्फुटित होता है।

यह प्रस्फुरन हृदय की तरलता, कुण्ठा या संवेग से सम्भावित होता है। काव्य जगत् का प्रजापति कवि अपनी आनन्द पिपासु प्रजारुपी सहृदय की पिपासा का शमन करने के लिये जीवन और जगत् को अपनी नवनवोन्मेष प्रज्ञा द्वारा नितनूतन रुप मैं अभिव्यक्त करता है, और उसकी यह अभिव्यक्ति जनमनरंजन में समर्थ होती है । कवि की वाणी से प्रस्फुटित नूतन–नूतन उद्‌गार प्रमाता को आहलादकता प्रदान करते हैं और यह अहलादता काव्य शास्त्रियों की दृष्टि में रस कहलाती है। रस वस्तुतः काव्य का प्राण है।

यद्यपि काव्य मीमांसाकार आचार्य राजशेखर नन्दिकेश्वर को 'रस' का मूल व्याख्याता मानते हैं तथापि प्रामाणिक रूप से काव्य का आत्मतत्व रस का इतिहास आचार्य भरत के नाट्य शास्त्र से ही प्रारम्भ होता है। भरत से पूर्ववर्ती आचार्यों ने रस के स्वरुप पर पर्याप्त विवेचनात्मक दृष्टिपात किया है। यह तथ्य स्वयं भरतमुनि के आनुवंश्य श्लोकों तथा कुछ वैकल्पिक विचारों के उपस्थापन से स्पष्ट होता है। निश्चय ही भरतमुनि ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों की रस विषयक अवधारणा का पूर्ण उपयोग किया है। आचार्य भरत द्वारा प्रदत्त रस–सूत्र पूर्वकालिक आचार्यों की रस विषयक मान्यताओं का ही सार प्रतीत होता है, किन्तु इस विषय में भरत के नाट्य शास्त्र में उपलब्ध आधारों के अतिरिक्त अन्य कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होने से नाट्यशास्त्रकर्त्ता आचार्य भरत मुनि को ही रस स्वरुप का प्रतिपादक आचार्य माना जाता है।

(क) रस स्वरुप –

रस स्वरुप के विवेचन की दृष्टि से भरत ने दो आनुवंश्य श्लोकों को उपस्थित किया है।

यथाबहुद्रव्ययुतैर्व्यजनै बहुर्मियुतम्,
आस्वादयन्ति भुंजानां भक्तं भक्त विदो जनाः ।
भावाभिनय सम्बद्धान् स्थायि भावांस्तथा बुधाः,
आस्वादयन्ति मनसा तस्मान्नाट्य रसाः स्मृताः ।।'

इस प्राचीन मान्यता के आधार पर ही भरत ने अपना रसस्वरुप निम्नशब्दों में पर्यालोचित किया है –

"तत्रविभावानुभावव्यभिचारिसंयोगात् रसनिष्पत्तिः ।''

को दृष्टान्तः ? अत्राह यथा हि नाना– व्यंजनौषध– द्रव्य–संयोगात् रस निष्पतिः तथा नाना भावोपमाद्रस – निष्पत्तिः । यथा हि गुडा भिर्द्रव्यैर्व्यजनैरौषधिभिश्च षाडवादयोरसानिर्वत्यन्ते तथा नाना भावोगत अपि स्थायिनो भावा रसत्वमाप्नुवन्तीति । अत्राह रसइति कः पदार्थः? उच्यते आस्वाद्यत्वात्। कथमास्वाद्यते रसः तथाहि नानाव्यंजन संस्कृ तमन्नं युंजानां रसनास्वाद्यति सुमनसपुरुषाहर्षादिश्चाधिगच्छन्ति, तथा नाना भावाभिव्यंजिता वागंग सत्वोपेतान् स्थायीभावानास्वादयन्ति सुमनसः प्रेक्षकाः हर्षादिश्चाधि गच्छन्ति तस्मान्नाट्य रसा इत्यभिव्याख्याता''''

उपर्युक्त पर्यालोचित अंश के अनुसार रस निष्पत्ति का सर्वप्रथम उल्लेख भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में किया है। वही सारे रस सिद्धान्तों की आधारभित्ति है। भरतमुनि के रससूत्र की व्याख्या में ही उत्तरवर्ती आचार्यों ने अपनी शक्ति लगायी और उसी के परिणाम स्वरुप –

1. उत्पत्ति वाद
2. अनुमिति वाद
3. मुक्तिवाद
4. अभिव्यक्तिवाद

इन चार सिद्धातों का विकास हुआ। विभाव, अनुभाव तथा संवारीभाग के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। इस भरत सूत्र में जो निष्पत्ति शब्द आया है उसके भी चार अर्थ होते है।

मट्टलोल्लट के मत में निष्पत्ति का अर्थ उत्पति

श्री शकुक के नत में निष्पति का अर्थ 'अनु निति' नट्टनायक के मत में निष्पत्ति का अर्थ 'भुक्ति' अभिनवगुप्त के मत में निष्पत्ति का अर्थ अभिव्यक्ति है।

अभिनव गुप्त को रस विषयक इसी व्याख्या के आधार पर ही आचार्य मम्मट ने रस के स्वरुप का विश्लेषण इस प्रकार किया है–

आलम्बन विभाव से उदबुद उद्दीपन से उदीप्त व्यभिचारी भावों से परिपुष्ट तथा अनुभावों द्वारा व्यक्त हृदय का स्थायी भाव ही रस दशा को प्राप्त होता है। काव्य को पढ़ने सुनने व उसका अभिनय देखने पर विभावादि के संयोग से निष्पन्न होने वाली आनन्दात्मक चित्तवृत्ति ही रस है।

कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च
रत्वाचे स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः ।
विभावा अनुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिण व्यक्तः
स तैर्विभावयैः स्थायी भावो रस स्मृतः । ''

इस कारिका में विभाव, अनुभाव, व्यभिचारिनाव तथा स्थायी भाव से रस की निष्पति का वर्णन करते हुये यह बताया गया है कि लोक में रवि आदि स्थायीनाव के जो कारण, कार्य और सहकारी होते है वे यदि नाटक या काव्य में प्रयुक्त होते है तो क्रमशः विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी गाव कहलाते है और उन विभाव आदि कारण कार्य तथा सहकारी से व्यक्त रति आदि स्थायी भाव ही रस कहलाता है। आचार्य विश्वनाथ ने कोऽयं रस की जिज्ञासा को शांत करते हुये इसके स्वरुप पर इस प्रकार प्रकाश डाला है–

विभावेनानुभावेन व्यक्तः संचारिणा तथा ।
रसतामेतिरत्यादिः स्थायी नाक सचेतसाम्।।''

अर्थात सहृदय पुरुषों के हृदय में स्थित वासनारूप रति आदि स्थायी भाव ही विनाद अनुनाव और संचारी नाव द्वारा अभिव्यक्त होकर रस के स्वरूप को प्राप्त करते हैं।

'व्यक्तो दध्यादिन्यायेन रूपान्तर परिणतोव्यक्तीकृत एव रस काव्यादि के सुनने से अथवा नाटकादि के देखने से आलम्बन उदीपनविभावों विशेष कटाक्षादि अनुभावों और निर्वेद, ग्लानि आदि संचारी भावों के द्वारा अभिव्यक्त होकर सहृदय पुरुषों के हृदय में स्थित वासना रूप रति हास, शोक आदि स्थायी भाव, श्रृंगार, हास्य और करुण आदि रसों के स्वरूप में दध्यादिन्याय से दुग्ध से दधि आदि की तरह दूसरे रूप में परिणत) परिणत होते है।

जिसका मुख्य लक्ष्य सहृदयों के हृदय में आनन्दानुभूति को उनावित करना है। इस आनन्दमय अनुभूति को ही रस कहते है (ख) रसास्वादन – रसारवदन के प्रकार पर प्रकाश डालते हुये आचार्य विश्वनाथ कहते है कि– स्वाकारवदभिन्नत्वेनायमास्वाद्यते रसः।। '' अर्थात् रस का हेतु सत्योद्रेक है और कुछ प्रभाता लोग अपने आकार की अभिन्नता सत्वोद्रेकादखण्ड स्वप्रकाशानन्द चिन्मय वेद्यान्तर स्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वाद सहोदरः ।

लोकोत्तर चमत्कार प्राणः कश्चितप्रमातृभि से उस रस का आस्वादन करते है वह रस अखण्ड, स्वप्रकाशानन्द चिन्मय इतरज्ञान से शून्य ब्रह्मानन्दसहोदर, और लोकोत्तर चमत्कार युक्त होता है। विश्वनाथ के इस कथन से रस की निम्नलिखित नौ विशेषतायें स्पष्ट होती है।

1. रस सत्वगुण के उद्रेक से प्रकट होता है। रजोगुण और तमोगुण से अस्पृष्ट अन्तःकरण को सत्य कहा गया है। सामान्य शब्दावली में यह सांसारिक नग देष से मुक्त वित्त की वैशय की स्थिति है और इस स्थिति में ही रस का आस्वादन होता है।
2. अवग–दर्शन से रसानुभूति कर सकते है। सर्वसाधारण (वासना शून्य) नहीं।
3. रस अखण्ड है इसमें एक तो विभाचानुभाव की पृथक–पृथक प्रतीति नहीं होती,
4. रस प्रमाता द्वारा ही आरवाय है केवल सहृदय सामाजिक ही काव्या दूसरे रस की अनुभूति में परिणाम का भय नहीं होता।
5. रसानुभूति वेद्यान्तर स्पर्श शून्य होती है रसानुभूति अन्य ज्ञान से अर्थात देशकाल एवं स्व–पर तटस्थ की भावना से रहित होती है।
6. एस एव प्रकाशानन्द और चिन्मय होता है – रस में संवेद और संवेग दोनों की स्थिति पगार्थ से रहती है। विमानों के कारण संवेद (ज्ञान) और संचारीभाव, अनुमान तथा स्थायी भाव के कारण संवेग की स्थिति रहती है।
7. एस लोकोत्तर चमत्कार प्राण है – एस से उत्पन्न होने वाला आनन्द वाहा इन्द्रियगत अनुकूल संवेदजन्य आनन्द से सर्वथा भिन्न प्रकार का है। वह मानस प्रत्यक्ष कहा जाता है। इसकी अलौकिकता के आधार पर ही विभावादि को इस हेतु कहकर उन्हें विभावादि जैसा नाम दिया गया है।
8. एस. हारवाद सहोदर है रसानुभूति विषयानन्द से भिन्न है, क्योंकि वह इन्द्रियों का विषय नहीं चौतन्य आत्मा का विषय है, तथापि ब्रह्मानन्द और काव्यरस में अन्तर है। प्रथम स्थायी है और द्वितीय अस्थायी इसीलिये आचार्य विश्वनाथ में काव्य रस को ब्रह्मानन्द न कहकर ब्रह्मानन्द–सहोदर कहा है।
9. एस आय पदार्थ है विश्वनाथ के अनुसार रस खा जाता है। रस्यते इति अभिनव गुप्त की कल्पना है कि पस स्वयं आस्वाद है, आस्वाद्य नहीं परवली आचार्यों ने इसी गत का अनुसरण किया है। व्यवहार में रस का आरवादन किया जाता है ऐसा प्रयोग प्रचलित है। यदुक्तं लोचनकारै–
10. रसाः प्रतीयन्त इति त्वोदनं पचतीति वद् व्यवहार

ठ. दारवाद में राजद की होती है रसानुभूति के समय जाती हु या जानने योग्य सभी प्रकार की वस्तुओं का ज्ञान विलीन हो जाता है और इतनी तन्मयता आ जाती है, कि प्रमाता की आत्मसत्ता भी रसमय ही प्रतीत होती है।

(ग) रसाभिव्यक्ति के साधन

साहित्यशास्त्र में रसनिष्पति के तीन साधन स्वीकृत किये गये है।

1. विनाय
2. अनुभाव
3. व्यभिचारी भाव।

इन तीनों का संयोग एरा निम्पति का कारण कहा जाता है। राहृदयों का स्थानीमाय इन तीनों विभावादि का संयोग प्राप्त कर ही स रूप में निष्पन्न होता है। दूसरे शब्दों में स्थायीभावसाधन नहीं है क्योंकि विनावादि के संयोग को आपन्न स्थायोगाय का ही दूसरा नाम र है। प्ररंगानुसार स्थायी नान तथा पक्त तीनों साधनों विभाव–अनुमादारी मात का स्वरुप प्रस्तुत है।

(प) स्थायीभाव

एस के उन्मीलन तथा रूप को जानने के लिये हमे अपने ही चित्त के भावो को रहता है। दैनिक जीवन में हम इसी प्रकार के विविध नावों का अनुभव किया करते है। अचेतन मन के अन्तराल में छिपने वाला भाव बहुत देर तक रहता है और इसी कारण यह स्थायीभाव है। वासना रूपी जनों में है. उही रसास्वाद प्राप्त होता है। जिनमें वासना नहीं ऐसे लोग वो रंगशाला के स्तम दीवार और पाषाण के समान होते हैं।

असहृदय के अन्त करण में जो संस्कार वासनारूप में सदा विद्यमान रहते है तथा जिन्हें कोई भी अविरुद्ध या विरुद्ध भाव दया नहीं सकता उन्हें स्थायीभाव करते है।

यही रसरूप आस्वाद का अंकुरकंद है।

अविरुद्धा विरुद्धा वा यं तिरोधातुमक्षमाः ।
आस्वादाकुरकन्दोऽसौ भावः स्थायीति संमतः।।''

यह नाव अन्त तक अवस्थित रहने वाला भाव है और इसी में रस के अंकुरण की मूल शक्ति निहित रहा करती है।

सजातीय विजातीयैरतिरस्कृत मूर्तिमान
यावद्रसं वर्तमान स्थायीभाव उदाहृतम्।। ''

स्थायी भावों की संख्या सामान्यतया नौ मानी जाती है। रति हास, शौक, उत्साह, क्रोध, भय, जुगुप्सा, विरमय और निर्वेद आचार्य विश्वनाथ निर्वेद को स्वीकार नहीं करते। उनके अनुसार स्थायी गायों की संख्या आठ ही है किन्तु नये स्थायीभाव राम का भी उल्लेख किया है।

रति हांसश्व शोकश्व क्रोधोत्साहो भयं तथा।
जुगुप्सा विस्मयश्वेत्थमष्टी प्रोक्ताः रामोऽपि च।।''

नौ रस के ये नौ स्थायी भाव सतत् सुषुप्तावस्था में विद्यमान रहते हैं जो कार्य कारण सहकारी का साहचर्य प्राप्त करके रस रूप में परिणत होते हैं।

निष्कर्ष

किसी भी रचना का आधार रचयिता का हृदय एवं उनकी बुद्धि का सम्मिलित व्यापार होता है। कवि की अनुभूति तथा अनुभूत तत्वों की साधु अभिव्यक्ति ही साहित्य सौष्ठव की कोटि में आता है। स्वयं की भावना तथा सामाजिकों की भावना को शब्दों से भरना यहीं भावना शब्दार्थों से झरता हुआ रस रूप में व्यक्त होता है जो काव्य का हृदय कहलाता है। यहाँ पर भाव पक्ष को हृदय पक्ष के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है ।

सन्दर्भ

1. साहित्यदर्पण प्र. परि. – पृ.सं. 18,
   ''ध्वनिकारेणाप्युक्तं नहिकवेरितिवृत्तमात्र निर्वाहेणात्मपद लाभः ।
   इतिहासदेरेव तत्सिद्धेः ।
2. ध्वन्यालोक प्र. उद्योत श्लोक संख्या – – 6
3. साहित्यदर्पण – तृ. परि. – पृ.सं. 118
4. साहित्यदर्पण – पृ.सं. 31 (गद्य)
5. ध्वन्यालोकलोचन – पृ.सं. 87
6. साहित्यदर्पण– पृ.सं 29 (अग्निपुराण की उक्ति)
7. राजशेखरकृत काव्यमीमांसा – रसाधिकारिकरुपकनिरुपणीयं भरतः ।
8. नाट्यशास्त्र – पृ.सं.– 271
9. नाट्यशास्त्र– पृ.सं.– 272
10. काव्यप्रकाश – उल्लास कारिका सं. 27, 28
11. साहित्यदपर्ण तृ.परि कारिका सं.–1
12. वही पृ.सं. 111 –
13. वही पृ.सं.– 2.3
14. वही – प्र.परि. – पृ.सं. – 31
15. वही पृ.सं. 112